विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - १०, गुरुवार, तारीख ४-९-१९८०
वचनामृत - ३५५, ३५६, ३५७ प्रवचन-२४

वचनामृत-३५५। अन्त में। **निस्पृह ऐसा हो जा कि...** अन्तर स्वरूप प्राप्त करने के लिये निस्पृह ऐसा हो जाना **कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए,...** मेरा अस्तित्व जो आत्मा पूर्ण आनन्द आदि अस्तित्वस्वरूप, वह एक ही मुझे चाहिए, दूसरी कोई चीज़ नहीं चाहिए। आहाहा! ऐसी लगनी लगे। **एक आत्मा की ही लगन लगे...** अपना निज स्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभाव उसकी त्रिकाली अस्ति, वही मुझे चाहिए। आहाहा! ऐसी भावना में **और अन्तर में से उत्थान हो...** अन्तर में आत्मा की लगन हो और अन्तर में पुरुषार्थ हो। लगन और पुरुषार्थ में उत्थान हो **तो परिणति पलटे बिना न रहे।** तो परिणति-पर्याय पर-ओर के लक्ष्य से जो पलटती है, वह स्व-ओर पलटे बिना रहे नहीं। आहाहा! शब्द तो थोड़े हैं, भाव (गहन) है।

निस्पृह तो ऐसा हो जाना चाहिए कि मुझे मेरा अस्तित्व (चाहिए)। मेरी अस्ति जो है त्रिकाली वस्तु, उसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिए। ऐसी निस्पृह दशा हो और अन्तर में लगन लगे और अन्तर में पुरुषार्थ झुके तो परिणति अर्थात् पर्याय पलटे बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। वह कोई बाहर की क्रिया या आचरण से प्राप्त हो, ऐसी यह चीज़ नहीं है। बाह्य आचरण और बाह्य क्रिया लाख, करोड़ करे... आहाहा! लाख बात की बात... आता है छहढाला में? 'निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम ध्यावो।' भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानस्वरूप (है), जिसका स्वभाव अनन्त-अनन्त आनन्द, ज्ञानादि अनन्त गुण का पिण्ड है वह। उसकी लगनी लगे तो परिणति पलटे बिना रहे नहीं। परिणति पर सन्मुख जो है, वह परिणति स्वसन्मुख हो जाए। आहाहा! भाषा बहुत थोड़ी है, भाव (गहन है)। वह ३५५ (पूरा हुआ)।

मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है। उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है। बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है। शरीर के प्रति राग छूट गया है। शान्ति का सागर उमड़ा है। चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगे उछल रही हैं। ज्ञान में कुशल हैं, दर्शन में प्रबल हैं, समाधि के वेदक हैं। अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों, इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। देह में वीतरागदशा छा गयी है। जिन नहीं परन्तु जिनसरीखे हैं ॥३५६॥

३५६। अब मुनिराज की बात आयी। **मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है।** आहाहा! शरीर, वाणी में तो नहीं, परन्तु पुण्य और पाप में, शुभाशुभभाव में भी, मुनिराज का वास-निवास नहीं है। आहाहा! **मुनिराज का निवास चैतन्य देश में है।** जहाँ राग और द्वेष है नहीं और अकेला चैतन्य अनन्त-अनन्त गुण का स्वरूपरूप निज देश। आहाहा! निज देश-चैतन्यदेश में है। **उपयोग तीक्ष्ण होकर...** जानने-देखने का उपयोग सूक्ष्म और तीक्ष्ण होकर **गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है।** आहाहा! गहरी-गहरी गुफा अर्थात् ध्रुव। आहाहा! अपना जो ध्रुव स्वभाव, उस ओर वर्तमान की पर्याय, उसके सन्मुख अन्दर जाती है। आहाहा! फिर भी वह पर्याय और ध्रुव एक नहीं हो जाते। आहाहा! ऐसी बात है।

उपयोग तीक्ष्ण... जानने-देखने की सूक्ष्मता ऐसी होनी चाहिए कि **गहरे-गहरे चैतन्य की गुफा में चला जाता है।** गहराई में ध्रुव की ओर ही मुनिराज की दशा चैतन्य देश की ओर ही ढल गयी है। आहाहा! पुण्य का भाव, दया, दान, व्रत, महाव्रत परिणाम आता है, परन्तु वृत्ति चैतन्यदेश में बहती है। राग की ओर वृत्ति नहीं है, जानने लायक है। रागादि आता है, उसका अस्तित्व है, ऐसा जाने। परन्तु निवास तो अन्दर चैतन्यगुफा में है। आहाहा! यह बात ऐसी सूक्ष्म है।

बाहर आने पर... अन्तर चैतन्यस्वभाव ज्ञायकभाव जागृत स्वभाव, जो अपने में जागृतपना कायम स्वभावी है। जागृतपना है, वही आत्मा है। रागादि, द्वेषादि कोई आत्मा नहीं। आहाहा! जो अपने में पर को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। पर को जानने में अपनी पर्याय को ही जानता है। ऐसी चैतन्यशक्ति की गहरी गुफा... आहाहा!

मुनि उसमें चले जाते हैं। उसमें दृष्टि चली जाती है। बारम्बार मुनिराज की परिणति अन्तर की ओर के झुकाव में ढलती है। आहाहा! **बाहर आने पर मुर्दे जैसी दशा होती है।** एक ओर चैतन्यदेश, एक ओर मुर्दा। आहाहा! भाषा बहुत सादी है। परन्तु... एक ओर चैतन्यदेश प्रभु, उसकी जिसकी अन्तर परिणति पलटी, परिणति अर्थात् जिसकी अवस्था पलटी, उसको चैतन्यदेश स्व और पुण्य-पाप आदि बाहर है। बाहर आता है तो मुर्दे जैसा है। उसमें उत्साह नहीं है। राग और पुण्य-पाप का भाव आता है, कोई बार आर्तध्यान भी हो जाता है, मुनि को रौद्रध्यान नहीं है। रौद्रध्यान पंचम गुणस्थान तक (है)। यहाँ कहते हैं, मुर्दे जैसी दशा हो जाती है। आहाहा!

जैसे मृतक कलेवर हो, वैसे चैतन्यदेश की अपेक्षा से चैतन्यदेश और स्वभाव से विपरीत भाव में पुण्य और पापभाव, पुण्यभाव विशेष है, उसमें भी मुर्दे जैसी दशा है। आहाहा! **शरीर के प्रति राग (एकता) छूट गया है।** शरीर के प्रति राग (अर्थात्) एकता छूट गयी है। थोड़ा अस्थिरता का राग रहा है, फिर भी उस राग का राग नहीं होता। राग का राग नहीं होता। चैतन्य के प्रेम के समक्ष... आहाहा! अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु चैतन्य, उसके अन्दर लगनी के प्रेम के कारण राग में आते हैं, परन्तु मुर्दे जैसा दिखे। आहाहा! जागृति स्वभाव की अपेक्षा से अजागृत में आते हैं तो जैसे मुर्दा आया, ऐसे आते हैं। आहाहा! यह मुनि की दशा।

शान्ति का सागर उमड़ा है। मुनिराज किसको कहें! आहाहा! तीन कषाय का जहाँ अभाव (हो गया है), उतनी तो शान्ति का सागर उमड़ा-उछला है। शान्ति का सागर उछला है। आहाहा! शान्ति.. शान्ति... शान्ति। इतनी शान्ति की शान्ति का सागर उछला है। आहाहा! क्योंकि कषय तो संज्वलन जितना अल्प है। संज्वलन-जरा-थोड़ा। बाकी तो शान्ति है। आहाहा! **चैतन्य की पर्याय की विविध तरंगें उछल रही हैं।** चैतन्य की पर्याय ज्ञान की। अरे..! ज्ञान और आनन्द, वीर्य आदि चैतन्य की जो पर्याय है निर्मल, विविध तरंगें उछल रही है। अनेक प्रकार के तरंग के उछाले युक्त परिणति रही है। भाषा थोड़ी सादी है, भाव बहुत गहरे हैं। आहाहा! **तरंगे उछल रही हैं।**

ज्ञान में कुशल हैं,... मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, और इसके सिवा दूसरी चीज़ को भी जानते हैं, परन्तु ज्ञान में कुशल हैं। रागादि व्यवहार आता है मुनि को, परन्तु राग में कुशल हैं,

जाननेवाले हैं। आहाहा! **ज्ञान में कुशल हैं, दर्शन में प्रबल हैं,...** दर्शन उपयोग लो तो भी प्रबलता है। समकित-दृष्टि तो द्रव्य पर है। आहाहा! **समाधि के वेदक हैं।** शान्ति। लोगस्स में आता है, श्वेताम्बर में। समाहिवर मुत्तं दिंतु। लोगस्स में। श्वेताम्बर में लोगस्स आता है, उसमें। समाधि अर्थात् आत्मा की ओर की झुकाव की शान्ति। रागादि है, वह असमाधि-अशान्ति है। आहाहा! अपनी **समाधि के वेदक हैं।** समाधि का वेदनेवाला है। साथ में ज्ञान आ गया है। समाधि में ज्ञानादि अनन्त गुण (आ गये)।

रात्रि को प्रश्न हुआ था न? ज्ञान भी साथ में वेदता है। क्योंकि अनन्त गुण में एक अतीन्द्रिय आनन्द का रूप है। अनन्त गुण की संख्या में अतीन्द्रिय एक आनन्द नाम का गुण है। तो सबमें आनन्द है। ज्ञान आनन्द, दर्शन आनन्द, चारित्र आनन्द, शान्ति आनन्द, स्वच्छता आनन्द, कर्तृत्व आनन्द, भोक्तृत्व आनन्द, उन सब गुणों में प्रत्येक में आनन्द (है)। क्योंकि एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! रूप का अर्थ, जैसे ज्ञान है और अस्तित्व नाम का गुण भी अन्दर है। तो अस्तित्व गुण भिन्न है और ज्ञानगुण भिन्न है। फिर भी ज्ञान 'है', 'है', ऐसा अस्तित्व का रूप भी ज्ञानगुण में है। अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। अपने स्वरूप में 'है'। ऐसे प्रत्येक गुण 'है'। अस्तित्वगुण उसमें होने पर भी अपने प्रत्येक गुण में 'है', ऐसा स्वरूप और रूप भी अपने से है। आहाहा! क्या कहा समझे?

आत्मा में अस्तित्व नाम का गुण है। सत् सत्। और ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है। तो प्रत्येक में अस्तित्व का रूप है। अस्तित्वगुण भिन्न (है)। एक गुण दूसरे गुण में जाता नहीं, परन्तु दूसरे गुण में उसका—अस्तित्व का रूप अर्थात् ज्ञान है, आनन्द है, वीर्य है, ऐसा अपने कारण से अस्तित्व का 'है' पना है। अस्तित्वगुण के कारण से उसका अस्तित्व है नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात।

कहते हैं, **समाधि के वेदक हैं।** मुनिराज तो आनन्द के वेदक हैं। शान्ति के वेदक हैं। राग आता है, वेदक भी हैं थोड़े, परन्तु उसकी मुख्यता न कहकर, समाधि के ही वेदक हैं। समाधि अर्थात् शान्ति। आधि, व्याधि, उपाधिरहित समाधि। आधि—कल्पना, विकल्प। व्याधि—शरीर। आधि, व्याधि, उपाधि—बाहर का संयोग। उपाधि—बाह्य संयोग। व्याधि-शरीर में रोग। आधि—कल्पना, पुण्य-पाप की कल्पना। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित

समाधि। आहाहा! जिसमें उपाधि संयोग चीज़ तो नहीं है, परन्तु जिसमें शरीर की व्याधि-रोगादि नहीं है। परन्तु जिसमें कल्पना पुण्य-पाप की कल्पना जो आधि है, वह भी समाधि में नहीं है। आहाहा! ऐसी समाधि का वेदन है।

अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके आश्रय से अनन्त गुण की एक समय की व्यक्त पर्याय अनन्त गुण की प्रगट हुई, और वह भी तीन कषाय के अभाव से सब प्रगट हुई, उससे तृप्त-तृप्त हैं। आहाहा! जैसे भूखा मनुष्य आहार-पानी अनुकूल मिले तो तृप्त-तृप्त लगता है। वह तो बाहर की जड़ की बात है। यह अन्तर की खुराक। आत्मा की अन्दर खुराक। आहाहा! शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अन्तर की खुराक है। उस खुराग में... आहाहा! वेदक हैं, तृप्त-तृप्त हैं। आहाहा! दुनिया से पूरी अलग बात है।

मुनिराज मानों वीतरागता की मूर्ति हों,... आहाहा! वह तो वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। त्रिकाल वीतरागस्वरूप आत्मा है। ऐसी पर्याय में वीतरागता आ गयी। आहाहा! जैसी वीतराग की शक्ति और स्वभाव है, वैसी पर्याय में भी वीतरागता आ गयी। वीतराग की मूर्ति हैं। आहाहा! राग और द्वेष का कण-अंश बिना अकेला वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहा..! मुनिराज की। नीचे पंचम गुणस्थान आदि में तो दो कषाय है। एक में अतृप्ति और उतना दुःख है। चौथे गुणस्थान में भी तीन कषाय का सद्भाव है। उतना वह वेदन और दुःख है। परन्तु उससे रहित जितना हुआ, उतना ज्ञान और आनन्द का वेदन है। मुनि को तो तीन कषाय रहित हुआ। आहाहा! शान्ति का सागर जो आत्मा, पूर्ण वीतरागता में तो प्रगट हो जाता है, परन्तु मुनिराज को शान्ति का सागर जो आत्मा, पूर्ण वीतरागता में तो प्रगट हो जाता है, परन्तु मुनिराज को शान्ति का सागर उमड़ जाता है। आहाहा! शान्ति में समाधि.. समाधि, आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द। तृप्त-तृप्त रहते हैं। आहाहा! **मानों वीतरागता की मूर्ति हों,...** जाने। मानों अर्थात् जाने कि वे तो वीतराग की ही मूर्ति है। भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है, ऐसी पर्याय में वीतरागता आ गयी है।

नियमसार में तो पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनिराज में और वीतराग में अन्तर माने, वह जड़ हैं, ऐसा कहते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार में दो श्लोक है। उसमें एक श्लोक तो ऐसा है कि भगवान में और मुनिराज में थोड़ा राग का अन्तर है। एक श्लोक ऐसा

है पहला। बाद में दूसरा श्लोक लिया कि वीतराग में और मुनि में अन्तर माने, हम जड़ हैं। हम जड़ हैं, ऐसी भाषा ली है। आहाहा! साधु। आहाहा! वीतराग में और मुनिराज में कोई अन्तर माने, वह जड़ है। आहाहा! उसे चैतन्य की जागृति अन्दर तीन कषाय के अभाव की हो गयी। जगमगाती ज्योति चैतन्यपर्याय में शक्तिरूप तो थी त्रिकाल में सबमें, परन्तु यह तो पर्याय में जगमगाती ज्योति (प्रगट हुई)। अनन्त-अनन्त गुण की अनन्त व्यक्ति प्रगट दशा जहाँ हुई, आहाहा! वहाँ वह तृप्त-तृप्त मानों वीतराग की मूर्ति है। आहाहा!

इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। साक्षात् मानो वीतराग की मूर्ति हो। इस प्रकार परिणमित, पर्याय में परिणमन, अवस्था ही उसरूप हो गयी है। जैसा वीतरागस्वभाव त्रिकाल है, वैसी पर्याय में वीतरागपरिणति हो गयी है। आहा..! उसे मुनि कहते हैं। आहाहा! **देह में वीतरागदशा छा गयी है।** आहाहा! देह में भी... 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां...' वैसे पूरी देह में उपशमरस-शान्तरस (छा गया है)। भक्तामर स्तोत्र तो ऐसा कहते हैं कि जितना शान्त परमाणु हैं, परमाणु; वह सब प्रभु के शरीर में आकर परिणमित हो गये हैं। जितने परमाणु में... उसकी शान्ति अर्थात् जड़ की, हों! आहाहा! वह सब परमाणु परमात्मा तीर्थंकर केवली के शरीर में आकर (बस गये हैं)। शरीर उपशमरस का पिण्ड हो, आत्मा तो उपशमरस का पिण्ड है ही, परन्तु शरीर उपशमरस का पिण्ड है, ऐसा देखते हैं। आहाहा! शरीर में भी थोड़ी भी चपलता या विकृति जरा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी दशा वीतराग की है, वैसी मुनि की हो गयी है, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार परिणमित हो गये हैं।** आहाहा!

देह में वीतरागदशा छा गई है। देह में वीतरागदशा छा गयी। दिखे, ऐसा दिखे। देह तो जड़ है। शान्त.. शान्त.. शान्त। वीतरागस्वभाव जहाँ पूर्ण प्रगट हुआ, तो देह में भी मानो शान्ति की छाया दिखे। शान्त.. शान्त.. शान्त। आहाहा! देखो! यह मुनि की व्याख्या! आहाहा! **इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। जिन नहीं...** भले वे जिन नहीं हैं, **परन्तु जिनसरीखे हैं।** आया न पहले? मुनिराज ने... वीतराग और मुनि में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं मानना। यह। **जिनसरीखे जिन हैं।** जिनसरीखे जिन हैं। आहाहा! जिनसरीखे जिन हैं। जिन भले नहीं हैं, परन्तु जिनसरीखे जिन ही हैं। आहाहा! अकेला वीतरागभाव। विकल्प की कल्पना की जहाँ शान्ति हो गयी है। अकेला चैतन्यमूर्ति भगवान अपनी पर्याय

में वीतरागतारूप परिणमित हो गया है और अकेली वीतराग की छाया, देह में भी मानो वीतराग की छाया दिखे। ऐसी दशा प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसी मुनि की परिभाषा है।

णमो लोए सव्व साहूणं। ऐसे। आहाहा! ३५६ (पूरा) हुआ न?

इस संसार में जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है। उसे किसी का साथ नहीं है। मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट और आश्रय मानता है। इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में अकेले भटकते हुए जीव ने इतने मरण किये हैं कि उसके मरण के दुःख में उसकी माता की आँखों से जो आंसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है, उसमें आत्मा का हित कर लेने जैसा है, बिजली की चमक में मोती पिरो लेने जैसा है। यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजली की चमक की भाँति अल्प काल में विलीन हो जायेंगे। इसलिए जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे अकेला ही सुख के मार्ग पर जा, अकेला ही मुक्ति को प्राप्त कर ले॥३५७॥

३५७। ३५७ लिया है। **इस संसार में जीव अकेला जन्मता है,...** कोई संग नहीं। यह बात एकत्व सप्तति में आ गई है। आत्मा आत्मा के कारण जहाँ जाता है, कर्म, कर्म के कारण साथ में जाते हैं और कर्म के निमित्त से, निमित्त के वश, उससे नहीं, विकार भी विकार अपने कारण से जाता है। यह आ गया है। आहाहा! आत्मा, आत्मा के कारण से जाता है, कर्म, कर्म के कारण जाते हैं और विकार भी विकार के कारण जाता है। तीनों भिन्न-भिन्न रहते हैं। आहाहा! निश्चय की बात परम सत्य (होने पर भी) रूखी लगे और एकान्त जैसी लगे। इसमें मानो कोई व्यवहार नहीं आया। व्यवहार की बात क्या करनी? व्यवहार तो पूरा व्यवहार है। विकल्प से लेकर समस्त लोकालोक व्यवहार है। एक भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति की दृष्टि, ज्ञान, अनुभव और स्थिरता (हुई), उसमें भी मुनि की स्थिरता... आहाहा! उसके सिवा विकल्प से लेकर पूरा संसार व्यवहार है। पूरा लोकालोक व्यवहार है। निश्चय में एक अपना आत्मा। व्यवहार में विकल्प से लेकर पूरा लोक। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **इस संसार में जीव अकेला जन्मता है,...** अकेला है। भले कर्म, कर्म के कारण; विकार, विकार के कारण (होता है)। कोई संग अन्दर में एक हुआ है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **इस संसार में जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है,...** आहाहा! देह छोड़कर अकेला चला जाता है। पैसा, बड़ा मकान पाँच-पाँच करोड़ का बनाया हो, धामधूम... आहाहा! अकेला जाता है। अकेला आया और अकेला जाता है। कोई दूसरी चीज़ उसकी उसमें है नहीं। दूसरे कर्म भले जाए, परन्तु वह तो भिन्न है। आहाहा! **अकेला मरता है,...** कर्म के कारण से नहीं। अपनी योग्यता इतनी (है)। निश्चय से तो ऐसा है, आत्मा भिन्न चीज़ है। दो को स्पर्श भी नहीं है—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा आयुष्य से यहाँ रहा है, ऐसा कहना वह तो निमित्त से कथन है। बाकी आयुष्य के परमाणु को तो भगवान छूता भी नहीं। और वह परमाणु आत्मा को छूता नहीं। परन्तु अपनी योग्यता से शरीर में रहता है। आयुष्य के कारण रहता है, ऐसा कहना वह निमित्त का कथन है। आहाहा! समझ में आया? अपनी योग्यता उतनी है, उस अनुसार रहता है। कर्म तो निमित्त परवस्तु है। उसके कारण से आत्मा रहता है और वह कर्म समाप्त होता है तो चला जाता है, वह सब व्यवहार का कथन है।

इसलिए यहाँ कहा, **अकेला मरता है,...** आयुष्य पूरा हुआ, इसलिए देह छूट गया, (ऐसा नहीं है)। उतनी योग्यता अनुसार वहाँ अकेला रहा। आहाहा! इस देह में, अपनी योग्यता-लायकात की पर्याय, जितने काल अपनी यहाँ रहने की योग्यता है, उतना काल रहता है। योग्यता पूरी हुई तो देह छोड़कर चला जाता है। आयुष्य पूरा हुआ तो चला गया, ऐसा कहना वह व्यवहार से कथन है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। आहाहा! एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को, अरे..! दूसरे पदार्थ को-जड़ को तो खबर भी नहीं है कि मैं कर्म हूँ। आयुष्य को खबर है कि मैं आयुष्य हूँ? भगवान आत्मा को खबर है कि मेरी योग्यता अनुसार मैं यहाँ रहता हूँ और योग्यता पूर्ण हो गयी तो यहाँ से निकल जाएगा। आहाहा! निमित्त के कथन शास्त्र में गोम्मटसार में तो ऐसा आये कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका। आयुष्य के कारण शरीर में रहता है। आहाहा! अन्तराय कर्म के कारण अन्तराय पड़ती है। आहाहा! वह सब निमित्त का कथन है। बहुत संक्षेप से ऐसा कहना कि अपनी

पर्याय की योग्यता से वह है... निमित्त से होता नहीं, इतना लम्बा नहीं कहकर... ऐसा कह दिया है।

बाकी तो प्रत्येक द्रव्य प्रतिसमय अपनी पर्याय की स्वतंत्रता से काम करता है। दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! एक शरीर दूसरे शरीर को छूता नहीं। शरीर को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! और शरीर आत्मा को छूता नहीं। प्रत्येक अपने-अपने अस्तित्व में (रहते हैं)।

यहाँ वह कहते हैं, आहाहा! **अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है,...** कर्म-बर्म के कारण नहीं। अकेला परिभ्रमण करता है। अपनी योग्यता से परिभ्रमण करता है। कर्म परद्रव्य है, जड़ है। पर तो निमित्त है। निमित्त को तो आत्मा छूता भी नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात। **अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है।** मुक्त होता है तो अकेला। आहाहा! अपनी पर्याय की योग्यता से (मुक्त होता है)। आठ कर्म का नाश हुआ तो मुक्त हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि आत्मा कभी कर्म को छुआ ही नहीं। आत्मा उसको स्पर्शा भी नहीं, स्पर्श किया नहीं और आत्मा ने कर्म में प्रवेश किया नहीं और कर्म ने आत्मा में प्रवेश नहीं किया। आहाहा! जहाँ आत्मा है, उसी क्षेत्र में कर्म हैं। फिर भी दोनों का क्षेत्र भिन्न है। आत्मा में वह प्रवेश करके रहा है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के सिवा (कहीं नहीं है)। स्वरूप ही ऐसा है।

अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है। आहाहा! मुक्ति भी अकेले की होती है। कर्म टलते हैं तो मुक्त होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय में अपूर्णता की योग्यता थी तो मुक्ति नहीं होता था। **पर्याय...** योग्यता हो तो मुक्त होता है। वह तो अपने कारण से है। कोई कर्म के कारण से यहाँ रहा है और कर्म गये तो मुक्ति होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात है। **उसे किसी का साथ नहीं है।** एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व का साथ नहीं है। सहारा नहीं है। आहाहा! एक तत्त्व के साथ दूसरे तत्त्व का साथ, साथ में यह आया तो इसे आना पड़ा, कर्म यहाँ से हटते हैं तो आत्मा को यहाँ से हटना पड़ा, ऐसा है नहीं। आहाहा! **उसे...** भगवान आत्मा को **किसी का साथ नहीं है।** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का साथ नहीं है, गजब बात करते हैं। वह सब तो व्यवहार का कथन है।

मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट... आश्रय - ओट.. ओट..। **ओट और आश्रय मानता है।** मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट... आहाहा! और उसका आश्रय (मानता है)। मुझे उसकी अनुकूलता है, सेठ की, दुकान की, ... तो मुझे ठीक है। वह मान्यता भ्रान्ति है, कहते हैं। मैं पैसेवाला हूँ, मैं निरोगी हूँ, मैं पुत्रवान हूँ, मैं साहूकार हूँ, मैं सेठ हूँ, आहाहा! सब भ्रान्ति है। वह चीज़ भिन्न और तेरी चीज़ भिन्न। तेरी चीज़ और उस चीज़ के बीच में तो अनन्त-अनन्त अभाव है। आहाहा! तो कहते हैं, **मात्र भ्रान्ति से वह दूसरे की ओट और आश्रय मानता है। इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में...** आहाहा! इस प्रकार चौदह राजूलोक में **अकेले भटकते हुए...** आहाहा! **इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में अकेले भटकते हुए जीव ने इतने मरण किये हैं...** मनुष्यपने की बात करते हैं। बाकी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय के मरण किये अनन्त। यहाँ तो मनुष्यपने इतने मरण किये... आहाहा! इस प्रकार जीव ने **इतने मरण किये हैं कि उसके मरण के दुःख में...** उसके मरण के दुःख में **उसकी माता की आँखों से...** मनुष्यपना लिया है। बाकी तो जन्म-मरण तो प्रत्येक (गति में किये हैं)। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय में अनन्त बार हुआ। परन्तु यहाँ मरण के दुःख में.. यहाँ पंचेन्द्रिय... उसकी माता की आँखों में जो आँसू बहे... आहाहा! **उनसे समुद्र भर जायें।**

अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है, प्रभु! तूने मनुष्य भव इतने धारण किये और उतनी बार तू द्रव्यलिंग धारण करके मर गया। द्रव्यलिंग तो धारण किया, परन्तु बाद में दूसरे भव किये। उतने भव किये कि तेरे मरने पर तेरी माता के आँसू से समुद्र भर जाए, उतनी बार तू मरा है। तेरी माता के आँसू निकले, ऐसी-ऐसी अनन्ती माता। आहाहा! यह तो पंचेन्द्रिय की बात है, मनुष्यपने की बात है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, निगोद वह अलग। यहाँ पंचेन्द्रिय मनुष्य की....

उसके मरण के दुःख में उसकी माता की आँखों से जो आँसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। आहाहा! भूतकाल में इतने मरण किये। प्रभु! अनादि से सत्ता तेरी तो है। अनादि-अनन्त तेरी सत्ता है। तो तेरी सत्ता कहाँ रही? परिभ्रमण में रहा। परिभ्रमण में तेरा देह छूटने के काल में, मुनुष्यपने में, तेरी माता की आँख में से आँसू बहे। आहाहा! बहुत साल पहले एक माँ देखी थी। उसके पुत्र को पैर में क्षय हुआ था। ऐड़ी होती है न? पैर

की ऐड़ी। घूंटी समझते हैं ? यह भाग। घूंटी कहते हैं। वहाँ क्षय हुआ था। प्रत्यक्ष देखा था। वहाँ क्षय हुआ था। दामोदर सेठ वहाँ थे। मुख्य मनुष्य था। उसके लड़के का लड़का था। यहाँ हड्डी में क्षय हुआ था। यह हड्डी है न ? वहाँ क्षय हुआ था। सड़ गया था। देखा था। आहा.. ! फिर लड़का मर गया। हम उपाश्रय में थे। वहाँ से मुर्दा निकला। पीछे उसकी माँ पछाड़-पछाड़ करे... पूरा शरीर... आहाहा ! अरे.. ! इसमें.. आहाहा ! पुत्र कौन और माँ कौन ? अकेले रहना, अकेले जाना, अकेले दु:ख सहन करना और अकेले मोक्ष का आनन्द करना। आहाहा ! हम उपाश्रय में बैठे थे। लड़के का मुर्दा निकला। उसकी माँ पीछे गिरी। बाजार के बीच... खड़ी होकर गिरे, आहाहा ! भान नहीं। जो गया, वह आये कब ? जो हो गया, सो हो गया। आहाहा ! यह तो प्रत्यक्ष देखा था।

यहाँ कहते हैं, **उसकी माता की आँखों से जो आँसू बहे, उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते...** आहाहा ! **बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है,...** आहाहा ! क्या कहते हैं ? भवपरिवर्तन करते-करते अकेला मनुष्य (भव) नहीं। भवपरिवर्तन करते-करते एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नारकी, देव, मनुष्य, पशु आदि। आहाहा ! **बड़ी मुश्किल से तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है,...** अनन्त काल के बाद बड़ी मुश्किल से (प्राप्त हुआ है)। .....